Chapter- 4

चतुर्थ परिच्छेद

नयी कविता : भाषा की क्रान्ति यात्रा

'नयी कविता की प्रयोगशीलता का पहला आयाम भाषा से सम्बंध रखता है ।[१] प्रत्येक युग में काव्यभाषा के प्रति कवि का दृष्टिकोण बदलता रहता है । हर समर्थ और आत्म सजग कवि अपने ऊपर अनुभूतियों का दबाव महसूस करता है । और सबसे पहले उसका ध्यान भाषा पर जाता है । परिवर्तित भाव बोध की स्थिति में प्रयोग एक अनिवार्य धर्म बन जाता है । 'छायावादी कवियों ने पिछले सैवे की कविता की भाषा को लेकर एक क्रान्ति शुरू की थी । परन्तु उनके आग्रहों में जीवन की सामान्य सच्चाइयों के प्रति एक खिंचाव या दूरी का भाव था । जिसके चलते वे उन मनोवैज्ञानिक कुंठाओं से घिर गये, जो भाषा की जीवन्तता में सबसे अधिक बाधक होती है ।[२] कोई भी प्रबुद्ध प्रतिभा सम्पन्न एवं सम्वेदनशील कवि भाषा की उपलब्ध क्षमताओं से सन्तुष्ट नहीं होता, भाषा की सम्भावनाओं का विस्तार करना उसके लिए अनिवार्य है ।[३] ~~मक्का~~-चूंकि जब सम सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में क्रान्ति की स्थिति आती है तब साहित्य का क्षेत्र भी उससे अछूता नहीं रहता । कवि भाषा को अधिक से अधिक अपने वातावरण तथा अनुभूतियों के अनुरूप बनाने की कोशिश करता है । आज के कवि के लिए भाषा एक माध्यम ही नहीं है बल्कि भाषा जीवन और समाज का एक प्रबल शस्त्र है, यदि कविता की भाषा दुर्बोध रही तो उसका कर्म अर्थात् लड़ने में मनुष्य का सहायक होना अनिवार्य हो जाता है ।'[४]

शब्दों में अधिक अर्थ या निहित अर्थ से अतिरिक्त अर्थ भरने की लालसा ही कवि को भाषा के प्रति विद्रोह करने को जाग्रत करती है और विवश

होकर कवि व्यंजना की नवीन प्रणालियों को ढूंढता है। व्यंजना भाषा की साधारण अर्थ विधायिनी शक्ति की सहायता करती है। आधुनिक हिंदी काव्यभाषा के आलोचकों ने भी इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि साहित्य में कथ्य अथवा दृष्टिकोण के बदलाव के साथ भाषा में भी बदलाव आता है। इसे काव्य भाषा का विकास कहा जा सकता है। काव्य-भाषा के स्वरूप को विश्लेषित करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है कि- 'भाषा के जिस रूप में साहित्य सर्जना होता रहता है कुछ समय के उपरान्त अनवरत व्यवहार से उसकी सम्भावनाएं चुक जाती हैं और वह भाषा रूप जड़ हो जाता है। अत: बदलते हुए नये युग के यथार्थ से जब वह अपने आपको संपृक्त करने में असमर्थ पाती है तो उसके विकास की मंजिलें पूरी हो जाती हैं। और उसका गत्यात्मक स्वरूप क्रमश: जड़ हो जाता है जिसे तोड़ने के लिए कवियों और लेखकों को नए पन की आवश्यकता होती है।[५] निराला ने भी इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए कहा है कि 'भाषा कभी स्थिर नहीं होती, युग की प्रवृत्तियों के अनुसार ही वह भी नवीन अर्थों से भर जाती है। तथा अपना रूप बदलती रहती है। प्रत्येक युग एक विशेष प्रकार का नाद वायुमण्डल में छोड़ता है। वही नाद भाषा की हृत्तन्त्री में प्रविष्ट हो जाता है। गलनशील युग जीर्ण पतझर के समान आगामी युग की भाषा रूपी वसन्त के लिए खाद बन जाता है। उसकी वीणा से नए छंद, नए गीत, नए राग, नयी रागिनियां, नयी कल्पनाएं फूटने लगती हैं।[६] प्रत्येक रचनाकार अपने सोच एवं अनुभव को नई टेकनीक तथा नयी भंगिमाओं के साथ अभिव्यक्त एवं सम्प्रेषित करना चाहता है। जिसके लिए उसे भाषा की समस्या से उलझना पड़ता है। भाषा की समस्या सभी श्रेष्ठ कवियों के समक्ष विद्यमान

रहती है । कवि की प्रतिभा केवल नयी वस्तु का ही उन्मेष नहीं करती वरन् उसके अनुरूप नयी भाषा का विन्यास भी करती है । जिस प्रकार हमारे रीति-रिवाज बदलते रहते हैं, परम्पराएं टूटती रहती हैं उसी प्रकार भाषा भी मनुष्य के विकास के साथ-साथ बदलती एवं विकसित होती रहती है । भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में भाषा की यह क्रान्ति यात्रा हजारों वर्षों से चली आ रही है । काव्य भाषा में होने वाली इस क्रान्ति तथा बदलाव का मूल उद्देश्य भी यही है कि काव्य भाषा को लोक के सन्निकट पहुंचना है । इलियट ने तो और आगे बढ़कर यह स्पष्ट किया है कि काव्य के क्षेत्र में प्रत्येक क्रान्ति लोकभाषा की ओर प्रत्यागमन के रूप में घोषित हुई है और ऐसा होना भी चाहिए ।[7] भारतीय भाषा साहित्य के इतिहास इस प्रकार की कितनी ही क्रान्तियां देखी गयी हैं । वैदिक संस्कृत को अपदस्थ कर लौकिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत को अपदस्थ कर पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश इत्यादि भाषाओं का विकास हुआ ।

काव्य भाषा के रूप में प्रयुक्त होकर खड़ी बोली अपने प्रारंभिक दौर में सहज, सरल बनी रही, साथ ही उसकी खड़खड़ाहट भी विद्यमान रही । कालान्तर में छायावादी कवियों ने उसमें माधुर्य, कोमलता एवं व्यंजक रूप से समावेश किया । उसकी अर्थगेयता बढ़ी, उसमें माधुर्य भाषा वह पूर्ण रूप से काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। किन्तु यहीं वह जन-सामान्य से पृथक हटकर अभिजात वर्ग की भाषा बनकर रह गई । अपभ्रंश को अपदस्थ कर मैथिली, ब्रज एवं अवधी इत्यादि भाषाएं अस्तित्व में आईं । आगे चलकर इसी क्रम में खड़ी बोली हिन्दी का भी विकास हुआ । खड़ी बोली काव्यभाषा

के प्रारम्भिक दौर में जहां पर सीधी-सरल तथा सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग मिलता है वहीं पर छायावादी काव्यभाषा अधिक विकसित, समृद्ध एवं विशिष्ट भाषा प्रतीत होती है। छायावाद के बाद फिर कवियों को भाषा की क्रान्तियात्रा से होकर गुजरना पड़ा। छायावादोत्तर कवियों द्वारा जैसे-जैसे भावों को जन-साधारण के निकट लाया गया, वैसे- वैसे इनकी भाषा भी बोलचाल के निकट आती गयी। तारसप्तक तथा प्रयोगशील कही जाने वाली कविता के कवियों ने छायावाद की विशिष्ट संस्कृत - शब्दावली के स्थान पर सामान्य बोलचाल की भाषा को महत्व दिया। शब्दों के नये- नये प्रयोगों पर बल दिया गया। वस्तु जगत के साथ रचनाकार के भावतन्त्र की बदलती हुई दशा से रचना के रूप में परिवर्तन का उदाहरण हम नयी कविता में देख सकते हैं। बदलते हुए भावतन्त्र की जटिलता को अभिव्यक्त करने के लिए नयी कविता के कवियों ने कविता के शिल्प और भाषा में अनेक प्रयोग किए। इस प्रयोग के फलस्वरूप भाषा मात्र अनुभव करने या वर्णन करने का एक निष्क्रिय साधन न रहकर अनुभव की गहनता से युक्त एक ऐसी सक्रिय सृजनात्मक भाषा का रूप ले लेती है जिसमें शब्द इस प्रकार मुक्त हो जाता है कि वह स्वयं में अपनी निर्वैयक्तिता प्राप्त करता दिखायी देता है। यहां पर शब्द का अर्थ उसकी एक पूर्व निर्धारित स्थिरता में नहीं बल्कि वस्तु और शब्द के बीच घटित होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया से व्यंजित होता है। मलयज के अनुसार अर्थ का यह तीसरा आयाम अर्थ के उन दो आयामों से भिन्न होता है। जिसके अन्तर्गत एक में अर्थ महज समझा जाता है और दूसरे में महज महसूस किया जाता है।[8] संभवत: इसी कारण नयी कविता

की भाषा अपने ऊपरी स्वरूप में बोलचाल की भाषा के अधिक निकट जाकर भी अपनी शक्ति खोती नहीं बल्कि और बढ़ाती है। अर्थ की दोहरी दीप्ति देती है। शब्दों में उनके साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ भरने के लिए मुक्त आसंग (फ्री एसोसिएशन) शैली ऊपर से विशृंखल और असम्बद्ध दिखलायी पड़ने वाले स्मृति-चित्र, नये उपमान, बिम्ब, प्रतीक, बलाघात से शब्दों में पैदा होनेवाली नयी व्यंजनाएं देखते हैं। काव्य भाषा में अर्थ के जिस तीसरे आयाम को लाने की कोशिश नयी कविता करना चाहती थी उस प्रक्रिया में इस क्रियात्मक-बोध के अभाव में शब्द रूप से टकराव के लिए वस्तु रूप की जीवन्तता धीरे- धीरे क्षीण होने लगी। सारा जोर मात्र कविता के शब्द रूप पर होकर रह गया। वास्तविक जीवन जगत में गतिमान शक्तियों की जिस द्वन्द्वात्मकता से इस शब्द रूप में अर्थ-विस्तार की संभावना बन रही थी, वह धीरे-धीरे कम होती चली गयी। वस्तु के भीतर गतिमान शक्तियां लगातार रूप को भी अपने अनुरूप ढालना चाहती हैं। एक सीमा के बाद वस्तु और रूप के बीच जब यह तनावपूर्ण सम्बन्ध बहुत अधिक बढ़ जाता है तो वस्तु के भीतर गतिशील शक्तियां पुराने रूप को तोड़कर एक नये संतुलन या संगठन में पुन: संयोजित होना चाहती हैं। रूप जब वस्तु की गतिशीलता को लगातार झुठलाते चला जाता है। तो ये शक्तियां विस्फोटक रूप में पुराने रूप को तोड़-फोड़ देती हैं। नयी कविता के युवा कवियों की कविता इसी प्रकार के विस्फोट के रूप में सामने आयी। कुछ कवियों की अशांत और उग्र मन:स्थिति, विक्षोभ पूर्ण अनुभव और पूर्ण नकारात्मकता एक ऐसी आक्रामक और मारक भाषा का इस्तेमाल करती है

जो सीधे नयी कविता के शालीन और भद्र काव्य मुद्रा के विरोध में तनी हुई प्रतीत होती है। जहां पर नयी कविता वस्तु तत्व में पनप रहे तनाव को अपने मध्यमवर्गीय खोखले अभिजात्य से ढकना चाहती हैं वहीं पर नयी कविता के युवा कवियों की कविता उसे उघाड़ कर रख देना चाहती है। ऊब, घृणा, जिज्ञासा, निरर्थकता बोध, निष्क्रियता और कटुता-बोध इस कविता में खुलकर आया है। शब्दों के प्रयोग में गोपनीयता लाने के बजाय उसे और अधिक खोलने का प्रयोग किया गया है। तथा बेबाक पन के साथ स्त्री और पुरुष के गुह्य अंगों की शब्दावली से यथार्थ के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्ति देने के लिए नंगी भाषा का इस्तेमाल किया गया है। जिसके परिणाम स्वरूप इन कवियों की भाषा ध्वनिगत लालित्य, कोमल चित्रात्मकता, का पूर्णतः परित्याग करती है। वैयक्तिक स्तर पर नयी कविता के कवियों का काव्य जहां बिम्बों और प्रतीकों के रूप में प्रकट होता था वहां पर अब इनकी कविताओं में बिम्बों और प्रतीकों की लड़ी न होकर सीधी-सपाट भाषा का इस्तेमाल हुआ है। इन कवियों की भाषा सीधी और सपाट होते हुए भी अभिधार्थ तक ही सीमित नहीं है। बल्कि अर्थ के और संश्लिष्ट रूप को वहन करने की क्षमता रखती है। यह नया रचनात्मक बोध रचयिता की इन सारी विसंगतियों को देखकर मन में उपजी एक गहरी वितृष्णा को धारदार ढंग से अभिव्यक्ति देने की सामर्थ्य रखता है। इन नये रचनात्मक भावों की अभिव्यक्ति एक साथ अनेक भावों की तहें मन पर सम्प्रेषित करती है। रघुवीर सहाय की भाषा जिस प्रकार आभिजात्य और शालीनता से मुक्त हुई उसका मूल कारण था कि बोलचाल की भाषा तथा जीवन के औसत सन्दर्भों में लिपटी हुई विडम्बनाओं, विसंगतियों और

नाटकीयता को मूर्त करना । भाषा को तनावपूर्ण एवं असंगत बनाने की क्रिया में सौमित्र मोहन और राजकमल चौधरी मात्र कुछ शब्दों पर ही निर्भर न होकर नितान्त निजी सन्दर्भों को ऐसे व्यापक सन्दर्भों से जोड़ते हैं जहां सन्दर्भ आपस में गड्ड-मड्ड होकर अर्थ को तनावपूर्ण बनाते हैं । नयी कविता के कवियों ने पुरानी भाषा के आभिजात्य को भंग करते हुए ऐसी आक्रामक भाषा का सहारा लिया है जिसके पीछे अनुभव का तनाव बहुत ही गहरा है । चिकने-गोल-मटोल एवं लालित्यपूर्ण शब्दों का नितान्त अभाव है । और उनकी कविता ऐसे शब्दों की आग्रही भी नहीं है ।[९६]

अपने नए-नए शब्दों और मुहावरों को नए सन्दर्भों के अनुसार फिट किया है जैसे कंधों पर विदूषक चेहरा, चिपकाना, कटघरों में पतिव्रता स्त्रियों को ठूंसना, पतियों को घोड़ों की टापों से बांधना, बच्चों के चेहरे पर अश्रु गैस के बम्ब पटकने और सुन्दर स्त्रियों को टायर से बांधने का बिम्ब निःसन्देह आक्रामक लगता है । अनुभवों के आधार पर यह एक अलग किस्म की ही रूमानियत है । अशोक वाजपेयी के शब्दों में 'यह एक अलग प्रकार की ही रूमानियत है इसलिए इसकी भाषा निपट एकायामी है ।[१०] डा० परमानन्द श्रीवास्तव ऐसी ही कविताओं की भाषा के बारे में लिखते हैं कि-'इधर की काव्य भाषा में देखते ही देखते सरलीकरण की प्रवृत्ति पैदा हुई है । जिसके मूल में एक प्रकार का अतिशय निर्वैयक्तिक दृष्टिकोण है । जो वस्तु के प्रति

Smt. HANSA MEHTA LIBRARY
151
UNIVERSITY OF BARODA

शायद गुण हो सकता है पर भाषा के प्रति अवश्य ही अपराध से कम नहीं है।'[११] रघुवीर सहाय ने भाषा को कलावाद के अतिरिक्त आग्रहों से मुक्त करने के लिए भाषा में सपाट बयानी का जो रास्ता अपनाया वह इन आक्रोशी युवा कवियों तक पहुंचते- पहुंचते पूरी तरह एक रेटरिक में कैद होकर भ्रष्ट हो गया। 'शीघ्र ही भाषा मुक्ति के इस अभियान में इतने मुजाहिद शामिल हो गये कि अनुभव जीवन को उसकी विविधता और तीव्रता जीने का नाम न होकर जीवन के प्रति एक काम चलाऊ रवैया हो गया। 'आम आदमी' एक संघर्ष रत मनुष्य की तरह नहीं, एक अवधारणा की तरह आया और भाषा में कविता को विस्थापित कर बैठ गया।'[१२] इस प्रकार आक्रामक भाषा ही जैसे सभी कवियों की अभिव्यक्ति का आधार बन गयी। धूमिल ने वाद और वादों की दुनिया से हटकर भाषा के आभिजात्य को तोड़ने का प्रयास किया।[१३] सर्वेश्वर ने भी अनुभूति की सच्चाई को सही अभिव्यक्ति मिले इसके लिए एक सही भाषा खोजने का प्रयास किया -

एक गलत भाषा में
गलत बयान देने से
मर जाना बेहतर है
अभिजात्य तोड़ता हूं।
जो भी शव्द आता है
जुबान पर
कहने में नहीं डरता।[१४]

धूमिल की काव्यभाषा अपने किसी भी समकालीन कवि की तुलना में न केवल

अधिक आवेग पूर्ण खरी, अन्तर्द्वन्द्व, तल्खी और एक मानवीय दिलचस्पी से भरी हुई चित्रात्मकता से युक्त है। बल्कि अन्य समकालीन कवियों की तह उनकी काव्य भाषा में यान्त्रिकता न होकर संवेदनीयता की खानगी है। जिसमें बड़बोल पन, स्फीत कथन, मितकथन, सूक्ति, तथा पहेली एवं मुहावरे एक विशेष चारित्रिक भंगिमा के अंग बन गये हैं। मानव- जीवन के अनुभूति की सच्चाई उनकी काव्य भाषा में ढेर सारे जीवन्त प्रसंगों चाक्षुष बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होती है। केदारनाथ सिंह की भाषा में भी एक आश्चर्यजनक सफाई और सुघड़ता है जो अनुभव की जड़ों तक पहुंचकर चीजों के मर्म को दैनंदिन यथार्थ सन्दर्भों में तलाशने का प्रयास करती है। धूमिल, जगूड़ी आदि कवियों की भाषा पर केदार की रचनात्मक भाषा का असर देखा जा सकता है। यह स्वाभाविक है कि इन कवियों में जातीय- स्मृतियों और सहज संवेद्य बिम्बों से जो भाषायी वक्रता है वह पूर्ववर्ती कवियों के भाषागत कौशल से अधिक प्रभावित है। एक और वह अपनी पिछली परम्परा के जीवन्त अंशों को और अधिक विकसित करती है तथा दूसरी ओर बची- खुची न्यूनताओं का परिमार्जन करती है। इस प्रकार नयी कविता के कवियों की यह भाषायी क्रान्ति निरन्तर विकास की ओर ही बढ़ी हुई दिखायी देती है। शताब्दियों पूर्व कबीर ने भक्ति और ज्ञान को लेकर जो क्रान्ति शुरू की थी वही क्रान्ति इन कवियों ने भी किया। अपना फकीरी ठाट लेकर अज्ञेय भाषा की इस क्रान्ति यात्रा के अग्रदूत बने।[१५] और यह क्रम युवा कवियों तक चलता रहा। युवा कवियों ने आज की कविता को कबीर की तरह एक नया तेवर ही नहीं दिया, अपितु एक सूक्ष्म संवेद्य तथा भाषा की साफ गोई भी दी।

भाषा के संकट से जूझते हुए कवियों का वक्तव्य :

साधारणीकरण एवं सम्प्रेषण की समस्या :

हर युग अपने साथ कुछ ऐसी महत्वपूर्ण कृतियां लाता है जिसका पूरा रचाव उस युग की आभ्यान्तरिक संवेदना से ही संभव हो सकता है। सामान्य रूप से देखा जाय तो हर बीतते हुए युग की संधि पर अस्वीकार का स्वर सुनायी देता है। किन्तु आधुनिक युग में तो अस्वीकार जैसे सारी चेतना का ही मूल हो गया है। दर असल जब सामाजिक परिवर्तन की बेचैनी समकालीन पीढ़ी में बढ़ जाती है तो अस्वीकार का स्वर प्रखर हो उठता है। यह पीढ़ी स्थापित व्यवस्था, अभिजात संस्कृति, कला और संस्कृति के ठहरावों को अस्वीकृत करना चाहती है जिसके लिए उसे भाषा के संकट से भी जूझना पड़ता है। आज के रचनाकार को समाज या परिवार, प्रतिष्ठा या वैराग्य अपमान या आदर सब चीजें एक सी बेमानी लगती हैं। और वह उसे कोई अर्थ देने के ~~बज~~ बजाय अपने अर्जित काव्य संसार द्वारा नया रूप प्रदान करने के लिए तत्पर दिखायी देता है। वह विसंगति एवं विरोधाभास का एक नया संसार रचने में मशगूल दिखायी देता है। अशोक वाजपेयी के अनुसार समकालीन कविता में राजनीति के उग्र और आक्रामक मुहावरे को ज्यों का त्यों घटा लेने की वजह से 'धीरे-धीरे भाषा अनुभव को उसके सभी जटिल तनावों के साथ सार्थक ढंग से व्यवस्थित करने का उपकरण न रखकर शब्दों की एक निष्कारण परम्परा भर रह गयी।[१६] यद्यपि कुछ कवियों ने अपनी पूर्ववर्ती काव्य परंपरा के प्रति भाषा को लेकर एक विद्रोही रूप धारण किया।[१७] निरर्थक शब्दों के प्रयोग से काव्य भाषा दूषित नह न हो इसके लिए वह कवियों को साजिश

भी देता है - काट कविता का गला काट। लेकिन मत पाट रद्दी के शब्दों से भाषा का पेट ।[18]

नयी कविता में भाषा का संकट अपनी पूरी शक्ति के साथ अनेक कवियों के समक्ष उभरता हुआ दिखायी देता है । एक ओर तो अनुभूति को ढोने में भाषा सक्षम नहीं मिलती यदि कुछ सामर्थ्य मिलती भी है तो वह बाह्य दबाव के कारण सच्ची अभिव्यक्ति पाने में विवश है । उसकी अनुभूति अभिव्यक्ति में न ढाल पाने की विवशता दो कठिन पाटों के बीच पिसने की स्थिति है ।

भाषा की अपूर्णता की अकुलाहट। मैं घुटा हूं। लाशों से भरे। सदियों से ब न्द पड़े । मुर्दा तहखाने में। अजगर से अंधेरे में।[19] भाषा की अपूर्णता की यह त्रासद स्थिति कवि के हृदय को बारम्बार मथित करती है ।[20] कवि के ऊपर भाषा का संकट अन्य कलाकारों की अपेक्षा अधिक गंभीर रूप में विद्यमान है । एक ओर तो शब्द गति न जानने की विवशता है- 'मेरी कथ्य अपराजित मुखर। अभिव्यक्ति अक्षर मौन पीती रहे। लेकिन शब्द गति जाने नहीं ।[21] और दूसरी ओर दूसरी ओर भाषा का सुन्दरतम उपयोग न कर पाने की छटपटाहट।[22] ~~जहाँ~~ जहां पर चित्रकार के पास रंग, फलक, और तूलिका है, संगीतकार के पास वाद्य यन्त्र है, मूर्तिकार के पास पत्थर, मिट्टी, हथौड़ी और छेनी है वहीं पर कवि के पास केवल शब्द है । इसके अतिरिक्त उसके पास दूसरा कोई साधन नहीं है ।

अमूर्त तथा अप्रस्तुत को प्रस्तुत एवं मूर्त बनाने की असाध्य साधना कवि को शब्दों के द्वारा ही करनी पड़ती है । एक ही सामाजिक स्तर के दो पाठकों की

जीवन परिपाटियां भी संवेदनात्मक स्तर पर भिन्न हो सकती है तथा उनके विचारों में भी पर्याप्त अन्तर आ सकता है । संभवत: ऐसे शब्द बहुत कम हैं जिनसे दोनों के मन में एक ही प्रकार के चित्र या भाव उमड़ सकें ।

नयी कविता के कवि कर्म की सबसे बड़ी समस्या साधारणीकरण और सम्प्रेषण की समस्या है । मुक्ति बोध के अनुसार 'कवि कर्म कोई सहज कार्य नहीं है । कवि को भाषा के संकट से होकर गुजरना पड़ता है ।अभिव्यक्ति के प्रयत्न-कलाकर्म, बहुत कुछ अभ्यास में निहित है । लेखक को अभिव्यक्ति साधना में- काव्याभास में न केवल विशेष प्रकार की अभिव्यक्ति का अभ्यास जाता है, वरन् विशेष प्रकार की भाव-संवेदनाओं का भी अभ्यास हो जाता है ।[२३] तथा अभिव्यक्ति संघर्ष के दौरान कलाकार भाषा का भी निर्माण करता है ।[२४] 'अर्थ-गर्भ-मौन' के द्वारा सम्प्रेषण को श्रेष्ठ बताते हुए अज्ञेय जब कहते हैं कि -'कवि शब्दों का न केवल भरपूर उपयोग करता है बल्कि कभी-कभी शब्दों या वर्णों का उपयोग न करके ही अर्थ की वृद्धि करता है ।[२५] तब वे कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा एवं संरचनात्मक दक्षता पर ही बल देते हैं । कभी- कभी कवि अपने समय तक चले आ रहे काव्य बोध की सीमा को तोड़ना चाहता है तथा नए सन्दर्भों और ख्यालों के लिए उसे एक हद तक मुक्त करना चाहता है । अधिकांश कविताओं का लक्ष्यीभूत श्रोता स्वयं कवि ही लगता है, वह अधिकांश में यथार्थ जीवन के जटिल दृश्यों को प्रस्तुत करने की जगह वस्तुस्थिति के प्रति अपनी तात्कालिक प्रतिक्रियाओं और मन पर पड़े प्रभावों के ऊपरी रंगों को अभिव्यक्त करता है । 'नतीजा यह होता है कि कहीं हमें वक्तव्य ही वक्तव्य मिलते हैं, और कहीं आत्म निवेदन कहीं कोरे कटाक्ष मिलते हैं तो कहीं कोरी शिकायत मिलती है । ये कवि व्यापक सामाजिक स्थितियों, मजदूरों, किसानों तथा मध्यम वर्ग के वस्तु जगत को चुनते हैं । किन्तु उसे पूरी तरह प्रस्तुत नहीं कर पाते ।'पूरी तरह प्रस्तुत न कर पाना या चित्रित न।

कर पाना इनकी रचना प्रक्रिया की सबसे बड़ी समस्या है । जगदीश गुप्त भी भाषा के इसी संकट से जूझते हुए यह स्वीकार करते हैं कि शब्द को अर्थ दिया जाता है । शब्द में निहित अर्थवत्ता मात्र पर्याप्त नहीं है । धनुर्धर की तरह कवि का उद्देश्य है - लक्ष्यवेध अर्थात् सम्प्रेषण जिसके लिए उसे शब्दों में नया और सच्चा अर्थ भरने का दायित्व स्वीकार करना है ।[२६] परमानन्द श्रीवास्तव ने भी भाषा के इसी संकट तथा सम्प्रेषण की समस्या की ओर संकेत किया है - 'क्या कहूँगा मैं । शब्द मेरे चुक जायेंगे । अर्थ का आकार। असफल। भटक जायेगा । कहने के सभी माध्यम । विवश । असमर्थता के चिन्ह जैसे । छूट जायेंगे ।[२७]

अज्ञेय के अनुसार किसी भी कवि की मौलिकता एवं सामर्थ्य की दो कसौटियाँ हैं- शब्द प्रयोग और शिल्प, नया कवि नयी वस्तु को ग्रहण और सम्प्रेषित करता हुआ कभी शिल्प के प्रति उदासीन नहीं रहा है, क्योंकि वह उसे प्रेषण से काटकर अलग नहीं करता ।[२८] 'तारसप्तक' में संगृहीत कवियों को राहों के अन्वेषी[२६] कहकर अज्ञेय ने काव्य भाषा के इसी संकट से जूझते हुए कवियों की ओर संकेत किया है जिसे आगे चलकर उन्होंने इस प्रकार स्पष्ट किया कि काव्य- सत्य भाषा से अलग नहीं है और उसे भाषा में ही पाया जा सकता है ।[३०] तथा नयी कविता का पहला आयाम भाषा से ही ~~सम्बके~~ सम्बन्धित है ।[३१] जब तक व्यक्ति सत्य को व्यापक सत्य में नहीं बदल देता तब तक कवि को चैन नहीं मिलता और न ही कवि कर्म ही सफल हो सकता है यही सम्प्रेषण का अर्थ एवं लक्ष्य है ।[३२] प्रयोजन शीर्षक कविता

में कवि की मौलिक समस्या की ओर संकेत करते हुए अज्ञेय कहते हैं कि कवि का प्रयोजन केवल इतना कि शब्द द्वारा अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति हो जाय - प्रयोजन मेरा बस इतना है। ये दोनों जो । सदा एक दूसरे से तनकर रहते हैं। कब, कैसे किस आलोक स्फुरण में। इन्हें मिला दूं - । ये दोनों जो हैं बन्धु, सखा, चिर-सहचर मेरे।[33] इस अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही सम्प्रेषित होती है । आज के नये कवि के पास वह भाषा सम्पत्ति नहीं है जिससे वह अपने अनुभूत सत्य को सम्प्रेषित कर सके- हम सभी भिखारी हैं। भाषा की शक्ति। यह नहीं कि। उसके सहारे सम्प्रेषण होता है । शक्ति इसमें है कि उसके सहारे। पहचान का वह सम्बन्ध बनता है जिसमें। सम्प्रेषण सार्थक होता है ।[34]

पाउण्ड का भी यही मत है कि भाषा का निर्माण सम्प्रेषण के लिए हुआ था और भाषा का प्रयोग सम्प्रेषण के लिए होता है ।[35] सम्प्रेषण या अभिव्यक्ति को प्रयोग की मूल समस्या मानते हुए अज्ञेय ने उपलब्ध माध्यम की सीमाओं की ओर संकेत करते हुए कहा है कि 'निरन्तर व्यवहार के कारण शब्द अपनी अर्थवत्ता खोते रहते हैं और शब्दों के अर्थ में विस्तार करना या नया अर्थ भरना जरूरी हो जाता है ।[36] अज्ञेय के अनुसार कविता में भाषा का महत्व नहीं शब्द का होता है । 'शब्द अपने आप में आत्यन्तिक नहीं है, किसी शब्द का कोई स्वयम्भूत अर्थ नहीं है । अर्थ उसे दिया गया है वह संकेत है । जिसमें अर्थ की प्रतिपत्ति की गयी है ।[37] सम्प्रेषण को सार्थक बनाने के लिए कवि को सही शब्दों की तलाश है । इसी विषय की चर्चा करते हुए अज्ञेय कहते हैं कि ' केवल सही शब्द मिल जाये तो ------- मेरी खोज भाषा की खोज नहीं है । शब्दों की खोज है।'[38] प्रत्येक शब्द का प्रत्येक समर्थ उपभोक्ता उसे नया संस्कार देता है ।[39] कवि का उद्देश्य केवल

शब्द की निहित सत्ता का पूरा उपयोग करना ही नहीं वरन् उसकी जानी हुई संभावनाओं के परे तक उसका विस्तार करना है।

कभी- कभी कवि यह अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है, शब्दों के साधारण अर्थ में वह बड़ा अर्थ भरना चाहता है। पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं।[40] जिसके लिए उसे सम्प्रेषण की समस्या से होकर गुजरना पड़ता है। सम्प्रेषण की इसी समस्या से ग्रस्त होने के कारण आज का कवि अनेक प्रकार से अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। शैलीगत वैविध्य होने के कारण ही कभी- कभी कवि के भाव उलझ कर रह जाते हैं और यही उलझी हुई संवेदना साधारणी करण न हो पाने का कारण बनती है। इसी कारण से कवि की व्यक्तिगत अनुभूति समष्टिगत नहीं हो पाती। जीवन की जटिलता और उसके वैविध्य को अभिव्यक्त करने के लिए कवि भाषा को किसी हद तक गूढ़, अलौकिक, अथवा दीक्षा द्वारा बोधगम्य बनाने का प्रयास करता है। किन्तु यह उसकी शक्ति नहीं विवशता है। धर्म नहीं आपद्धर्म है।[41] इस आपद्धर्म को निबाहने के लिए कवि को भाषा के अनेक संकटों से जूझना पड़ता है। क्योंकि उसके सामने व्यक्तिगत को समष्टिगत बनाने का एक व्यापक सामाजिक उत्तरदायित्व है। इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए अभिव्यक्तिगत संसाधनों की असमर्थता उसे खौफनाक स्थिति में लाकर खड़ा कर देती है। और मजबूरन ही कवि को इन संत्रस्तकारी स्थितियों से निपटने के लिए भाषा के संकट ~~को~~ से जूझना पड़ता है और इस जूझने की प्रक्रिया में वह 'भाषा की क्रमशः

संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक और अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है। और इस सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है। और इस सारगर्भित अर्थ भरने की ललक के लिए तथा अपनी स्वानुभूति को व्यापकता प्रदान करने के लिए कभी- कभी वह फैंटसी का सहारा लेता है, कभी मिथकों के माध्यम से अपनी बात कहना चाहता है। कभी-कभी नये- नये बिम्बों की सृष्टि करना चाहता है।[४२] भाषा का यह संकट कवि को गहरे स्तर तक सालता रहा है। कवियों ने भाषा की अपूर्णता को जाहिर करते हुए स्वयं ही कहा है कि "मुझे अगर मेरी भाषा मिल जाय तो अपनी बात जरूर पूरी करूं।"[४३] सम्प्रेषण की इसी समस्या को सामने रखते हुए जगदीश गुप्त कहते हैं कि -

"अनुभूत भाव की यथार्थत: अभिव्यक्ति (बहुत ही हल्का लगेगा। मैं तुम्हारा और तुम मेरे कहूं तो और यदि यह कहूं। मेरे बीच तुम हो मैं तुम्हारे बीच हूं। तो भी नहीं यह कथन इच्छित अर्थ देगा।"[४४] सम्प्रेषण की समस्या से ग्रस्त आज का कवि "मैं तुम्हारा, और तुम मेरे में उलझा हुआ है। वह अपनी उलझी हुई संवेदना को अनेक अभिव्यक्ति गत संसाधनों द्वारा सुलझाने का प्रयास करता है। परन्तु उलझे हुए भावों को सुलझा न पाने के कारण भाषा का संकट उसके पास हमेशा के लिए बना रहता है।

नयी भाषा की तलाश :

नये यथार्थ के द्वारा वस्तु में जो परिवर्तन होता है वह पुराने कला रूप को खारिज कर एक नये रूप में अभिव्यक्त होना चाहती है। इस सम्बन्ध में

जार्ज लूकाज का कहना है कि " विषय वस्तु की नवीनता नये कला रूपों की मांग करती है जो इस बात को प्रमाणित करना है कि वस्तु में परिवर्तन ही मूलत: कला रूपों का कारण है।[४५] वाणी नवत्वमायाति- मधुमासमिव द्रुमा:[४६] कहकर ध्वनिकार ने भी इसी बात की ओर संकेत किया है। ध्वनिकार का कहना है कि जिस प्रकार प्रत्येक वर्ष वसन्त ऋतु के आगमन पर वृक्षों में नयी-नयी टहनियां और कोपलें उग आती हैं ठीक उसी प्रकार वाणी भी समय के साथ नये- नये परिवर्तन लाती है। भाषा के उत्स से कथन की नयी -नयी भंगिमाएं फूटती रहती हैं। अर्थाभिव्यक्ति के नये - नये आयाम विकसित होते रहते हैं। "चमत्कार मरता रहता है और चमत्कारित अर्थ अभिधेय बनता रहता है या यों कहें कि कविता की भाषा निरन्तर गद्य की भाषा हो जाती है। इस प्रकार हमेशा कवि के सामने चमत्कार के सृष्टि की समस्या बनी रहती है। वह शब्दों को नया संस्कार देता चलता है और ये संस्कार प्राय: सार्वजनिक मानस में पैठ कर फिर वैसे हो जाते हैं। जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है और अभिधेय बन जाता है, उस शब्द की रागोत्तेजक शक्ति क्षीण हो जाती है, उस शब्द से रागात्मक सम्बंध नहीं स्थापित हो पाता। कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिससे पुन: राग का संचार हो, पुन: रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो।"[४७] चूंकि नयी कविता की प्रयोगशीलता का पहला आयाम भाषा से सम्बन्ध रखता है।[४८] इसलिए इन कवियों ने भाषा को नया तेवर दिया। नये- नये शब्दों की खोज, शब्दों के नये सन्दर्भ प्रयोग तथा बिम्ब, मिथक, प्रतीक एवं मुहावरों को नया अर्थबोध दिया। नयी कविता

का कवि 'भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केचुल फाड़कर उसमें नया अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है।'[४६] प्रचलित अर्थ से अतिरिक्त अर्थ भरने की लालसा ने ही उसे व्याकरण के नियमों को तोड़ने पर विवश किया। नये अंग्रेजी कवियों की भांति उन्होंने स्वेच्छानुसार भाषा शब्दावली, भाषा में प्रयोग किए जाने वाले चिन्ह तथा इसके अतिरिक्त अन्य म अप्रकट साधनों से भाषा के प्रचलित मुहावरे को बदलने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त ~~मुहावरे-को-बदलने-का-प्र~~ इन कवियों ने काव्य भाषा की व्यंजकता बढ़ाने के लिए बिम्बों और प्रतीकों के क्षेत्र में नये प्रयोग किए। 'आज की हमारी संवेदना, हमारी अनुभूति की विशिष्टता, दृष्टिकोण की विविधता किसी भोग्य स्थिति के प्रति सचेतनता ने हमें एक अत्याधुनिक दृष्टि दी है। इन्हीं स्थितियों के अनुरूप हमारी भाषा, हमारे प्रतीक, हमारी बिम्ब योजना सभी कुछ उस पुरानी परम्परा से अलग दिखायी देते हैं। हमारी उपलब्धियां उनके भाव बोध के स्तर से भिन्न हैं। हमें तो हमारे ही समकालीन दूसरे कवियों की भाषाभिव्यक्ति भी अर्थहीन लगती है। आज पुराने रोमानी मूल्य हमें सारहीन लगते हैं। उनके प्रति कोई लगाव हममें दिखायी नहीं देता। इसी कारण से स्थापित मूल्यों से भिन्न रूपों में इन कविताओं का आकलन संभव होगा।[५०]

इस सन्दर्भ में पाउण्ड की यह उक्ति उचित एवं तर्क संगत है कि -'उत्कृष्ट साहित्य की अर्थवान भाषा है।'[५१] नयी भाषा की तलाश इस माने में थी कि भाषा शक्तिपूर्ण हो सीधी और सचोट हो। सीधी सचोट भाषा ही

सम्प्रेषण के लिए उपयुक्त होगी । अज्ञेय की दृष्टि में नयी भाषा की सार्थकता मानवीय सम्बन्धों की पहचान है -

'हम सभी भिखारी हैं
भाषा की शक्ति
यह नहीं कि
उसके सहारे
सम्प्रेषण होता है :
शक्ति इसमें है कि उसके सहारे
पहचान का वह सम्बन्ध बनता है जिसमें
सम्प्रेषण सार्थक होता है'[५२]

आधुनिक संवेदना एवं सामाजिक विसंगतियों के अनुरूप नयी भाषा निर्माण और अर्थ विस्तार की समस्या पर विचार करते हुए भारत भूषण अग्रवाल[५३] प्रभाकर माचवे[५४] भवानीप्रसाद मिश्र[५५] हरिनारायण व्यास[५६] रघुवीर सहाय[५७] प्रयागनारायण त्रिपाठी और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना[५८] ने कविता में सामान्य बोलचाल की भाषा पर बल दिया है । मदन वात्स्यायन बात युक्तता को नयी कविता की विशेष उपलब्धि मानते हैं ।[५९] कविता की बात युक्तता तथा सामाजिकता की रक्षा बोल चाल की ही भाषा में संभव है । अज्ञेय के अनुसार 'आज की कविता बोलचाल की अन्विति माँगती है, पर गद्य की लय नहीं माँगती, पर तुक-ताल का बंधन उसने आत्यन्तिक मान लिया है पर लय को वह उक्ति का अभिन्न अंग मानती है ।[६०]

भारतभूषण अग्रवाल को ऐसी नई भाषा चाहिए जो जीवन की मुट्ठी में गढ़ी गई हो ।[६१] गद्य और कविता को भाषा का ही रचाव मानते

हुए पाउण्ड का मत है कि 'कविता अच्छे गद्य की तरह लिखी जानी चाहिए। उनकी दृष्टि में कविता में सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग, लय और अर्थ की संगति नितान्त सार्थक विशेषणों का प्रयोग एकाग्रता और वस्तु निष्ठता वांछित है।[६२] इलियट के अनुसार कविता और संवाद में निकट का सम्बंध होता है और इस विषय में निश्चित नियम नहीं बनाये जा सकते। कविता में जब भी कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन होता है वह सामान्य बोलचाल की भाषा की ओर लौटती है।[६३] सामान्य बोलचाल की भाषा में परिवर्तन होते रहते हैं और परिणाम स्वरूप कविता का भी मुहावरा बदलता है।[६४] अत: अपने आस-पास की परिचित भाषा ही कवि द्वारा प्रयुक्त की जानी चाहिए।[६५] भाषा की प्रकृति परखते हुए उसके स्वरूप की रक्षा करना भाषा विकास में योगदान देना तथा उसकी अभिव्यक्ति क्षमता में वृद्धि करना कवि का दायित्व है।[६६] इलियट ने ऐसी नयी तराशी हुई भाषा का जिक्र करते हुए कहा है कि कविता की भाषा सीधी, सरल और जीवित होनी चाहिए। प्रत्येक शब्द कविता की समग्रता और उसके प्रयोजन से अनुशासित होना चाहिए। शब्दों और मुहावरों की आवृत्ति को उन्होंने स्पष्ट दोष माना है।[६७]

नयी कविता के कवियों ने प्रगतिकालीन कविता से दो कदम आगे बढ़कर यह सिद्ध कर दिया कि परिचित और साधारण शब्द भी अभिव्यक्ति की स्थायी ताजगी से नयी भंगिमाओं में सामने उतर रहे हैं। शब्द से भी अधिक महत्व प्रयोग का है कवि घिसे पिटे अर्थहीन शब्दों को प्रयोग की वेदिका पर चढ़ाकर उसे नया संदर्भ तथा नयी चेतना प्रदान करता है। भारत भूषण अग्रवाल के अनुसार -'परिशुद्धता वादी उसे चाहे कितना क्यों नहीं कोसें

दैनन्दिन बोलचाल में प्रचलित इन अंग्रेजी शब्दों के स्थान पर हिन्दी के शब्द बैठना- बैठाना कृत्रिम ही कहा जायेगा । और ऐसे शब्द भाव की व्यंजना नहीं कर सकेंगे । यथार्थ की भूमि पर जो काव्य खड़ा है उसका माध्यम यथार्थ भाषा ही हो सकती है - शब्द कोष की भाषा नहीं-[६८] नयी कविता ने सामान्य बोल चाल की भाषा और शब्दों की जिस कदर खातिर की है वह निश्चय ही विचारणीय है । अज्ञेय ने नयी कविता की प्रयोगशीलता का आयाम भाषा से सम्बन्धित बताया है ।[६९] उनके अनुसार 'कवि के समक्ष आधुनिक युग में बहुत बड़ी समस्या है । वह भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित, अर्थ भरना चाहता है । इसका कारण उसका अहंकार नहीं अपितु उसके अन्तस्तन को इसकी माँग सदा आकुल किए रहती है ।[७०] इसी कारण से प्रयोगवाद भाषा के आवें प्रयोग को नहीं भाषा के प्रति जागरूकता को आवश्यक समझता है ।[७१] नयी कविता के कवि नये संदर्भों में शब्दों को नये मान देने, और नयी भंगिमाएं प्रदान करने के निमित्त प्रयत्नशील रहे । अज्ञेय का कहना है कि-'जिसके पास प्रतिभा है, वह कभी अभिव्यंजना के एक अंग से तृप्त नहीं रह सकता । यह बात नहीं है कि एक ढंग में सफलता न मिलने पर ही वह दूसरी ओर म आकृष्ट हो । बल्कि एक ढंग में जितनी सफलता मिलती है उतना ही उसमें उत्साह बढ़ता है कि वह दूसरे ढंग को भी आजमा कर देखें ।'[७२] काव्य सृजन के दौरान कई बार ऐसी परिस्थिति आ जाती है कि कवि को जटिल भाषा का प्रयोग करना ही पड़ता है । गिरिजाकुमार माथुर की मान्यता है कि-'जब तक कवि के विचार जगत में यह गंभीर उलझाव और कुहासा है, तब तक उसकी अभिव्यंजना के उपकरण अर्थात् भाषा, प्रतीक, उपमान, छन्द, अपने आप आस्वाभाविक, अधूरे, खण्डित और रूप व्यक्तित्व विहीन होंगे । भाषा जान-बूझ कर बिगाड़ी या गढ़ी हुई होगी जिसका व्यावहारिक जीवन से

कोई सम्बंध न होगा । चेष्टापूर्ण लाए हुए निरर्थक बोध शून्य प्रतीक होंगे, उपमानों में कोई तारतम्य नहीं होगा । छन्द के नाम पर भ्रष्ट गद्य भी न मिलेगा ।[७३]

नयी कविता का कवि एक संघर्षशील व्यक्ति की तरह सभी निर्मम स्थितियों एवं मानवीय सन्दर्भों को जांचना चाहता है और वह इसके प्रति कुछ काव्यात्मक सन्देह या प्रश्न उठा कर ही संतुष्ट नहीं रहना चाहता ।

अब तुम बैठ सकते हो
या खड़े रह सकते हो
जितनी देर चाहो
अब तुम अपने गुस्से को निकाल कर
हथेली पर रख सकते हो
और देख सकते हो कि उसमें कितना तेजाब
और कितनी बाजार की धूल है ।[७४]

यह आज की नयी कविता है या हमारे उबलते जीवन की दास्तान है, समूची उबलती हुई अर्थवत्ता के साथ और बाजार, जैसा गैर साहित्यिक व्यापार जगत का सन्दर्भ छ यहां सिर्फ मुहावरा नहीं है यह एक अप्रत्याशित किसी हद तक एक नाटकीय अर्थ छिपाये हुए है ।

नयी कविता की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि जहां भी वह अपने समय के राजनैतिक पाखंड, ढकोसले तथा अत्याचार के प्रसंग को उभारती है वहीं पर वह इस प्रसंग को साधारण मनुष्य की जिंदगी को किसी ठोस

और अमानवीय प्रसंग में मूर्त करती है। जिन्हें समझते हुए भी हम अपनी स्थिति के प्रति एक नये ढंग से सजग होते हैं। इन कविताओं में एक नयी भाषा, मानवीय विकलता के एक नये दृश्य और अछूती भावभूमियां हैं। हम राजनीतिक चेतना को जिस परम्परागत ढंग से देखते रहे हैं उस तरह देखने पर संभवत: ये कविताएं हमारे लिए कठिनाई पैदा करें। नयी कविता की भाषा को सामर्थ्य युक्त एवं शक्तिशाली बनाने में बिम्बों और प्रतीकों का भी महत्वपूर्ण हाथ है। आगे चलकर युवा वर्ग की कविता मेंजो अनुभव की नाटकीयता, विडम्बना बोध, तथा धारदार आक्रोश एवं व्यंग्य की प्रवृत्ति मिलती है वहां एक नये प्रकार का काव्यार्थ पैदा करती है जिससे भाषा को नयी दिशा मिलती है।

भाषा के बदलते तेवर :

प्रत्येक कवि एवं रचनाकार की रचना प्रक्रिया में असमानता पायी जाती है। प्रत्येक रचनाकार का अनुभव नया होता है तथा वह कविता के माध्यम से एक नयी चीज समाज को देना चाहता है। परन्तु प्रस्तुतीकरण की जटिलताओं और विभिन्नताओं के कारण उलझी हुईसंवेदना को उसी रूप में अभिव्यक्त नहीं कर पाता। अभिव्यक्ति की इस जटिल प्रक्रिया में सर्वप्रथम शब्दों का ही सहारा लेना पड़ता है। शब्द जब उसकी अनुभूति को वहन करने में असमर्थ से प्रतीत होते हैं तो वह प्रतीकों का सहारा लेता है। प्रतीक भी जब उस अनुभूति के गाम्भीर्य को वहन करने की क्षमता नहीं रख पाते तब बिम्बों की संरचना करता है। कभी- कभी बिम्ब भी उनकी अनुभूति के दायरे को समेट नहीं पाते तब कवि मिथकों की आड़ लेता है। और जब कोई उपादान उसे सांत्वना नहीं दे पाते तो वह ज्ञान गर्भ

फैंटसी का सहारा लेता है । तथा कभी- कभी वह मिथकों और प्रतीकों की भाषा से मुक्त होकर कोरे गद्य का रचाव रचता है । जहां पर काव्य-भाषा में चमचमाते हुए बिम्ब, सूक्तियां तथा चमकदार वक्तव्य दिखायी पड़ते हैं । इन चमकदार उक्तियों में एक खास किस्म की वाचालता है, फिकरे बाजी है । चीजों के भीतर रहते हुए उनके समस्त तनावों और अनगढ़ता को पहचानने के लिए जिस अन्तर्दृष्टि, धैर्य और लगाव की जरूरत होती है उस कमी को यहां शब्दों की कमानी तान कर पूरा करने का प्रयास किया गया है । रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, केदारनाथ सिंह तथा सर्वेश्वर आदि कवियों के स्वरों में जो बदलाव आया है वह अज्ञेय के काव्य सिद्धान्त के निकट नहीं बल्कि और आगे बढ़ा हुआ है ।

(१) दांतों के बीच की जगहों में सटी हुई भाषा :

नयी कविता के कवि केदारनाथ सिंह के अनुभव की ठोस अर्थवत्ता यह है कि उनकी भाषा 'जिन्हवा पर नहीं, बल्कि दांतों के बीच की जगहों में सटी हुई है -

तुमने जहां लिखा है 'प्यार'
वहां लिख दो 'सड़क'
फर्क नहीं पड़ता ।
मेरे युग का मुहावरा है
फर्क नहीं पड़ता ।
और भाषा जो मैं बोलना चाहता हूं
मेरी जिन्हवा पर नहीं
बल्कि दांतों के बीच की जगहों में
सटी हुई है ।[७५]

नया कविता का कवि चारों ओर के विक्षोभ और बेचैनी को अपने साहित्य में प्रकट कर रहा है, संत्रास, ऊब, घुटन एवं बेचैनी को वह स्पष्ट रूप में नहीं कह पाता ।उसकी उलझी हुई सम्वेदना और किच-किचाहट जबान पर न आकर दांतों के बीच सटी हुई है ।

> 'किन्तु जिह्वा को
> दांतों-तले दबाके इतने बार काट लिया
> जितने बार कि ओठों पर लाया गया तुम्हारा नाम ।[७६]

नयी कविता का कवि तनाव एवं झुंझलाहट की जिस स्थिति से गुजर रहा है वह उस स्थिति को कविता में साफ-साफ नहीं कह पाता । वह छटपटाता है व्याकुल होकर भागता है उसकी किच-किचाहट कविता को दांतों के बीच धर दबोचती है और वह अपनी बात पूरी तरह नहीं कह पाता -

> मेरी कविता स्थगित हो गयी है,
> किट-किटाते दांतों के बीच ।[७७]

व्यक्त कर सके जिस परिदृश्य में कहीं छिपा हुआ औरांग-उटांग है, कहीं से आनेवाली चीर आवाजें हैं, कहीं से विलक्षण सीटियां है । आज यह जरूरी समझा जा रहा है कि भाषा आज की सृजन प्रक्रिया में बाहरी यन्त्र न हो, माध्यम न हो, निरापवाद न हो ।[७८] भाषा हवा के कणों में एक भूरी सी चमक हो जिसे कोई भी महसूस कर सके । असन्तोष और असहमति के आवाज की कविता, नाटक की उस भावभूमि पर लिखी जा रही है जिसमें नायक अपनी त्वचा को छिलके की तरह छीलकर सम्राट के

सूने सिंहासन पर रख देता है ताकि प्रमाता यह फील करे कि उसके जूते और दिल की दूरी कितनी कम हो गयी है। अनुभव का यह नया पन अभिव्यक्ति प्रक्रिया में एक सर्वथा नये अभिव्यक्ति संसाधनों की मांग करता है। आज का रचनाकार किसी गहरी अनुभूति को जो एक व्यापक रेंज की है, सम्प्रेषित करना चाहता है इसका मुख्य कारण यह है कि ज्ञान - विज्ञान का विकास और पिछली कई शताब्दियों के अनुभव के आधार पर वह ध्वनियों की प्रकृति और सीमा को कुछ और स्पष्टता से समझने लगा है। 'वास्तविकता यह है कि शब्द अपने आप में एक निश्चित अर्थ को न व्यक्त करके उस अर्थ व्यापकता के अन्तर्गत आनेवाले अनेक मिलते जुलते भावों को अभिव्यक्त करता है।[७९]

२- बिखरी हुई व्याकरण पस्त तनाव एवं झुंझलाहट की भाषा :

नयी कविता का कवि भाषा में अर्थ व्यंजकता लाने के लिए कभी-कभी व्याकरण के नियमों की अवहेलना भी कर जाता है। कभी- कभी वह तुम के साथ क्रिया में ओ प्रत्यय, आप के साथ इए प्रत्यय लगाकर भाषा को नया भाव बोध देता है।[८०]

मेरे शब्द एक लहरियाता दो गाना बन। उकडूं बैठे लोगों पर भिन-भिनाने लगे।[८१] यहां पर उकडूं बैठना का सह प्रयोग व्यक्ति के साथ है तथा भिन्न-भिनाना का मक्खी के साथ किन्तु यहां शब्द 'उकडूं बैठकर लोगों पर भिन-भिना रहे हैं' में सह प्रयोग की दृष्टि से विचलित रूप देखा जा सकता है। भाषा में संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेष आदि अलग-अलग

प्रकार के शब्द होते हैं, और हर भाषा के नियमानुसार उस भाषा में उनका प्रयोग होता है। परन्तु कविता में कभी- कभी कवि संज्ञा को क्रिया में परिवर्तित कर देता है जिससे भाषा व्याकरण ध्वस्त हो जाती है - पहले लोग सठिया जाते थे। अब कुर्सिया जाते हैं। मेरे दोस्त! भारत एक कृषि-प्रधान नहीं। कुर्सी प्रधान देश है।[८२] स्पष्ट है कि कवि ने संज्ञा कुर्सी को क्रिया कुर्सियाना बनाकर भाषा में एक नयी गति दी है।

महसूसते, अनुभवोगे, अट्टहासने, विश्वासें, निर्मातें, बतियाती, घमाय, अस्तार आदि में व्याकरण ध्वस्तता देखी जा सकती है। नयी कविता के कवियों के कवियों ने कोमलता, लघुता आदि के लिए पुलिंग शब्दों को स्त्रीलिंग में प्रयोग किया है। प्रत्येक भाषा की ध्वनि, रूप-रचना, शब्द-प्रयोग, वाक्य रचना तथा अर्थाभिव्यक्ति आदि के विभिन्न स्तरों पर अपनी व्यवस्था होती है तथा उसके अपने नियम होते हैं। भाषा का व्याकरण इन्हीं नियमों और व्यवस्थाओं की व्याख्या करता है। कभी-कभी भाषा को अधिक व्यंजक बनाने के प्रयास में कवि इन नियमों को तोड़ने के लिए मजबूर हो जाता है। पन्त की कविताओं में इस प्रकार के प्रयोग देखे जा सकते हैं उन्होंने स्वयं कहा है कि- "मैंने अपनी रचनाओं में कारणवश जहां कहीं व्याकरण की लोहे की कड़ियां तोड़ी हैं।"[८३] लक्ष्मीकांत वर्मा ने प्रचलित कविता के सौन्दर्य मानों से विमुख होकर 'ताजी कविता' कविता के लिए जिस भाषा की खोज की वह व्याकरण ध्वस्त भाषा थी जिसमें योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति का बेमेल प्रयोग देखा जा सकता है। उन्होंने स्वयं कहा है कि-"ताजी कविता जिस भाषा की खोज में है वह नंगी भाषा है- आवरणहीन, सज्जाहीन, संस्कारहीन, और इन सबसे अधिक एक ऐसा नंगापन, जिसमें अभिजात्य

जंगलीपन के ऊपर एक समय बोध की छाप लगा सके ।[८४] नयी कविता का कवि पहले से चले आते हुए भाषा के व्याकरणिक ढांचे को तोड़कर अतिरिक्त अर्थ भरने का प्रयास करना चाहता है जिसके लिए उसे भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था से सामना करना पड़ता है । भाषा की इस व्याकरण पस्तता के कारण पर टिप्पणी देते हुए लक्ष्मीकान्त वर्मा कहते हैं कि 'विसंगति, घुटन, विघटन, मृत्यु, संत्रास, जख्म, कोढ़, योनि, रजस्वलापन, ये सब के सब एक पत्थर के टुकड़े से कविता में व्यक्त होते हैं । इनमें यह क्षमता नहीं कि वे अपने को विलीन कर अर्थ की अन्य सीमाओं तक पहुंच सकें ।'[८५] स्वाभाविक ही है कि जब रचनाकार अनास्था, ऊब, घुटन, संत्रास को अभिव्यक्ति देना चाहता है तो उसके लिए वह व्याकरण के नियमों को कहां तक समूचा रख सकेगा । धूमिल ने इसी कारण व्याकरण पस्त होती हुई भाषा पर अफसोस जाहिर किया है । धूमिल की इस उक्ति से साफ जाहिर हो जाता है कि आज का रचनाकार कितनी सतही रचना में लगा है - तब आप कहो-------। इस ससुरी कविता को। जंगल से जनता तक ढोने से क्या होगा ? आप जवाब दो । मैं इसका क्या करूं ? ।--- जब ढेर सारे दोस्तों का गुस्सा। हासिए पर चुटकुला बन रहा है । क्या मैं व्याकरणकी नाक पर रूमाल लपेटकर निष्ठा का तुक विष्ठा से मिला दूं ?[८६] नयी कविता के कवियों ने यह अनुभव किया कि आज के विडम्बना बोध को प्रचलित काव्य व्यवस्था के भीतर व्यक्त करना असम्भव है इसलिए वह सतही भाषा को तोड़कर नंगी और आसमान सी खुली हुई भाषा का प्रयोग करता है । धूमिल का कहना है कि जहां पर हमारे देश की सम्पूर्ण व्यवस्था ही भ्रष्ट हो चुकी है वहां पर कवि की भाषा कैसे सलामत रह सकती है । भाषा का व्याकरण भ्रष्ट होना देश की शासन व्यवस्था पर निर्भर है -'उन्होंने किसी चीज को ।

सही जगह नहीं रहने दिया है। न संज्ञा। न विशेषण। न सर्वनाम। एक समूचा समूचा और सही वाक्य। टूट कर बिखर गया है। उनका व्याकरण। इस देश की शिराओं में। छिपे हुए कारकों का हत्यारा है।[८७] आज का कवि उसी प्रकार पीड़ित है जैसे कोई राही गर्म टीन की छत पर पैर रखकर चल रहा हो और लाखों वर्ष, तथा कांटे उसे फाड़ खा रहे हों। मलयज का कहना है कि-'अनुभव से साक्षात्कार के क्षण को उसकी चरम परिणति तक पहुंचाने के पहले ही कवि फट जाता है, शब्द और अर्थ एक दूसरे से अलग हो जाते हैं और काव्य संवेदना कच्चे बीजों की तरह बिखर जाती है।'[८८] नयी कविता के कवियों ने काव्य भाषा के तहत अश्लील शब्दों, अशुद्ध वाक्यों, ग्रामीण दोषयुक्त पदों को अपनाया तथा इसके साथ ही निम्नवर्गीय मुंहफट भाषा को अपनाया जिससे भाषा का व्याकरण पस्त हो जाना स्वाभाविक है।'छिन-छिनाते हुए क्रोध को मरोड़ दो' में कवि जिस कटुता को भरना चाहता है उससे सम्पूर्ण वाक्य टूटकर बिखर जाता है।

३- सपाट बयानी, वक्तव्य एवं पत्रकारिता की भाषा :

नयी कविता के कवियों ने भाषा के उस मूल तत्व को पकड़ने का प्रयास किया है जिसे वैयाकरणों एवं काव्य शास्त्रियों ने उत्तम कविता का साधन सिद्ध किया था। वैयाकरणों ने अभिधा को ही काव्य का मूल तत्व माना है उनके अनुसार अभिधा ही मुख्य है लक्षणा तो उसकी पूंछ है।[८९] अभिधा शक्ति से ही साहित्य शास्त्रियों ने लक्षणा और व्यंजना को आविर्भूत माना है। कुंतक ने ध्वनिमत का खण्डन करते हुए अभिधा को ही महत्व दिया है उनके अनुसार विचित्र अभिधा ही वक्रोक्ति है और वही

उत्तम काव्य का निकष है।[९०] रीतिकालीन आचार्यों ने भी 'अभिधा उत्तम काव्य है, कहकर अभिधात्मक कथन को महत्व दिया। निराला ने भी सीधी एवं सपाट उक्ति को 'नग्न नीलिमा सी व्यक्त' कहकर महत्व दिया है -

'अलंकार-श्लेशरहित, श्लेष हीन
शून्य विशेषणों से -
नग्न नीलिमा सी व्यक्त
भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी[९१]

नयी कविता के कवियों ने जिस सपाट बयानी एवं चालू मुहावरे की भाषा को अपनाया है वह निराला के समय से ही चली आ रही थी। 'तारसप्तक(१९४३, जिसे हम नयी शुरूआत मानते हैं, से पूर्व ही एक सही भाषा खोज ली गई थी) धारदार, सपाट और किसानू, लेकिन आगे चलकर इसी भाषा को कविता में जमीन दी। त्रिलोचन नागार्जुन,केदार अग्रवाल और मुक्तिबोध ने।[९२] अज्ञेय ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि 'चमत्कार मरता रहता है और चमत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता रहता है या यों कहें कि कविता की भाषा निरन्तर गद्य की भाषा हो जाती है।'[९३] इस गद्यात्मकता के आग्रह ने कविता में सपाट बयानी को प्रेरित किया है और आज की नयी कविता का कवि अपनी बात को बिना लाग-लपेट के कहना चाहता है। अशोक वाजपेयी का यह कथन है कि -'नयी कविता के कवियों ने बिम्बों और प्रतीकों की भरमार प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सपाट बयानी को प्रोत्साहित किया। बिम्बों और प्रतीकों में उलझे हुए

इन कवियों ने काव्य भाषा को बोझिल बनाने का ही प्रयास किया। नामवर सिंह के अनुसार 'छठे दशक के अन्त और सातवें दशक के प्रारम्भ में सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो उठी कि उसकी चुनौती के सामने बिम्ब-विधान कविता के लिए अनावश्यक भार प्रतीत होने लगा-समस्या परिस्थितियों के 'साक्षात्कार' की थी, प्रश्न हर चीज को उसके सही नाम से पुकारने का था ----- इस मुश्किल ने क्रमश: उस प्रवृत्ति को जन्म दिया जिसे अशोक वाजपेयी ने 'सपाट बयानी' कहा है।[६४] रघुवीर-सहाय, सर्वेश्वर, धूमिल, कमलेश, श्रीकान्त वर्मा, लीलाधर जगूड़ी आदि कवियों ने सपाटबयानी का प्रयोग किया है। दर असल यह सपाटबयानी गद्य की भाषा, बातचीत की भाषा या अखबार की भाषा न होकर जिंदगी के अनुभव की भाषा है जिसमें रोटी और नमक की गंध है और यही गंध जिंदगी के कहीं अधिक करीब लाने का प्रयास करता है वह भाषा एक ऐसे कवि की भाषा है जो चौराहे पर खड़ा है और उसके चारों ओर भीड़ है। इन कवियों ने अभिजात एवं संस्कारी भाषा को तोड़कर एक ऐसी भाषा को काव्य भाषा बनाने का प्रयास किया है जिसमें हम सांस लेते हैं और सोचते हैं और वह भाषा यही सपाटबयानी है। रघुवीर-सहाय की यह कविता -

अगर कहीं मैं तोता होता।
तोता होता तो क्या होता ?
तोता होता।
होता तो फिर ?
होता क्या ? मैं तोता होता
तोता ह तोता तोता तोता
बोल पट्ठे सीताराम -[६५]

रघुवीर सहाय की यह कविता ध्वनि सौन्दर्य की जिस छटा को उजागर करने का प्रयास करती है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है । भाषा से रचनात्मक खिलवाड़ करके उसमें नई अभिव्यंजना पैदा करने की कोशिश करते हैं । अगर वे तोता होते तो सेमल वृक्षों का एक निरापद वन होता, स्वाधीन डालियाँ होतीं और निरापद आकाश होता । भाषा का यह हलका सा खेल सपाट भाषा में होते हुए भी कवि की व्यंग्यात्मक अनुभूति को ठोस और मूर्त रूप देता है । धूमिल ने कविता को सार्थक वक्तव्य माना है ।[६६] जो सीधी एवं सपाट भाषा में लिखी जाती है । टिलियर्ड के अनुसार वक्तव्य काव्य 'वर्णनात्मक ढंग का काव्य होने से बहुत कुछ गद्य के निकट आ जाता है परन्तु यह कोरा गद्य नहीं होता । इस प्रकार के काव्य या तो किसी सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं या तो किसी नैतिकता की अभिव्यक्ति ।[६७] टिलियर्ड के अनुसार 'वक्तव्य काव्य' महानतम नैतिक सत्यों की अभिव्यक्ति के अनुपयुक्त होते हुए भी छोटे नैतिक सामाजिक सत्यों की अभिव्यक्ति के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है ।[६८] धूमिल, जगूड़ी, श्रीकान्त वर्मा आदि कवियों का काव्य वक्तव्य की ही कोटि में आता है । धूमिल की यह सपाट उक्ति एक सार्थक वक्तव्य ही है -

एक आदमी रोटी बेलता है
दूसरा आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है न खाता है
रोटी से खिलवाड़ करता है
मैं पूछता हूं वह तीसरा आदमी कौन है
मेरे देश की संसद मौन है ।[६६]

धूमिल,जगूड़ी,श्रीकान्त वर्मा आदि की काव्यात्मक परिधि को गौर कर देखें तो सचमुच वह कहीं-कहीं एकालाप, वार्तालाप, संलाप, हलफनामा, वक्तव्य आदि की सतहों से गुजरती हुई एक सार्थक जीवन की अभिव्यक्ति देती है जिसमें जीवन की झांकी अधिक गहराई तक दिखाई देती है।

रघुवीर सहाय की कविताओं की भाषा ऊपरी तौर पर बहुत सीधी सादी लगती है पर उसकी ताकत का पता उसमें निहित अनुभव के नाटकीय तनाव(जो दैनंदिन जीवन सम्बन्धित है) से पता चलता है -

'एक दिन
चिड़चिड़े बच्चों को लिए दवाखाने में खड़े-खड़े
मुझे एकाएक लगा मैं अधेड़ हो गया
न गला बंद कोट
न दुपट्टा
न टोपी
मैं बड़ा हुआ हा हा हू हू करता हुआ।' [१००]

उपर्युक्त पंक्तियों में चिड़ चिड़े बच्चों को लिए अधेड़ होने की प्रक्रिया को 'गलाबंद कोट' 'दुपट्टा' और 'टोपी' के साथ जोड़कर जिन भाव दशाओं की ओर संकेत किया गया है उसके मूल में मध्यमवर्गीय जीवन के लगातार निरर्थक और विद्रूप होते जाने का दुःख है, ऊपर से वह बनावटी पन को ओढ़ता है - मैं बड़ा हुआ हा हा हू हू करता हुआ जैसी हल्की-फुल्की पंक्ति लिखता है जिसमें एक साथ व्यंग्य है और करुणा भी। इसमें संक्षिप्ति व्यंग्य, क्रीड़ा, कौतुक आदि न होकर रचना के भीतर समाहित

अनुभव की वक्रता और व्यंजना की करारी चोट है। ठीक इसी तरह धूमिल की काव्य भाषा सार्थक वक्तव्य होते हुए अपने किसी भी समकालीन कवियों की तुलना में न केवल अधिक आवेग पूर्ण, प्रखर एक मानवीय दिलचस्पी से भरी हुई है वरन् चित्रात्मकता से भी युक्त है। धूमिल की भाषा में बड़बोलपन, मुहावरे, सूक्तियां तथा पहेलियां एक विशेष चारित्रिक भंगिमा के अंग बन जाते हैं। उनकी काव्य भाषा में सच्चाई ढेर सारे जीवन्त प्रसंगों, चाक्षुष बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। धूमिल की काव्य भाषा में बातूनीपन और नाटकीयता है केवल शब्द कौतुक और क्रीडा वृत्ति का परिणाम नहीं है। वह शक्तिहीन मिथकों, प्रतीकों और बिम्बों से इतर जीवन स्तर का स्पर्श करती हुई एक सपाट भाषा है जो सीधे ढंग से सच्ची बात कहना चाहती है। सर्वेश्वर की काव्य भाषा भी यही सपाट बयानी है उन्होंने अपनी कविता में बिम्बों और प्रतीकों का यद्यपि बहुत अधिक प्रयोग किया है तथापि उनकी काव्य भाषा एक तीखी दर्द और मार्मिकता लिए हुए है। टुकड़ों में उनके बिम्ब बड़े आकर्षक लगते हैं। सर्वेश्वर की भाषा सूत्रात्मकता और मुहावरे बाजी से बच कर लोकजीवन की मस्ती को लिए हुए है। इसी सपाटबयानी को अपनाए हुए बड़बोल पन पर आधारित वाक्चातुर्य जगूड़ी की काव्य भाषा में देखा जा सकता है। धूमिल के मोचीराम की तरह जगूड़ी का बलदेव खटिक भी वार्तालाप शैली पर आधारित है। व्यंग्य दृष्टि के कारण जगूड़ी की काव्य भाषा में भी चुस्त फिकरे, बड़बोलपन मुहावरेबाजी तथा सूक्तियों और पहेलियों का निर्माण हुआ है। बलदेव खटिक जैसी कविता में जहां वे वार्तालाप शैली अपनाते हैं वहीं पर वे उसमें एक किसानी अंदाज वाली व्यंग्य शैली का भी रंग भरते हैं। जगूड़ी की संवेदना शैली चूंकि एक बातूनी पन के अंदाज में अभिव्यक्त होती है इसलिए उसमें अभिव्यक्त होनेवाले फिकरे,

वक्तव्य, सूक्तियां मूलतः व्यंग्य का पुट लिए हुए हैं। जो जगूड़ी का एक केन्द्रीय मुहावरा है। कभी- कभी इनकी भाषा निखालिस वक्तव्य का रूप ले लेती है तो कभी-कभी पत्रकारों की तरह पत्रकारिता के उत्तेजक विवरणों तक पहुंच जाती है -

'सूखा बाढ़ और जाड़ा'
इस देश का समाजवाद
बीवियों ने बिगाड़ा।

कभी- कभी वह अभिनेता की तरह आकाश भाषित, एकालापी, नाटकीय ढंग से काव्य भाषा की नवता को चमकाने का प्रयास करता है। इन स्वयमालापों की भाषा का प्रयोग श्रीराम वर्मा धूमिल, जगूड़ी आदि कवियों ने किया है। इन कवियों ने भाषा की दरिद्रता को समृद्ध बनाने में एक नयी सोहरत दी है। इन कवियों के रचना कौशल को हम गौर से देखें तो कहीं एकालाप, कहीं वार्तालाप और संवादों से गुजरती हुई कविता नाटक के उस स्तर तक पहुंचती है जहां नायक अपनी त्वचा को चाकू से छील-छील कर आक्रोश एवं झुंझलाहट की उस सीमा तक पहुंच गया है जहां उसे कोई भाषा नहीं मिलती।[१०१] जबान पर स्पष्ट शव्द नहीं उभरते, जुबान लड़खड़ाती है प्रस्तुतीकरण के इन जटिलताओं के संकट से कभी- कभी कवि की भाषा हकलाहट में बदल जाती है। प्रथमतः कवि की जवान तालू में चिपट जाती है। कवि क-- कः क और सः सः स के उच्चारण में ही उलझ जाता है।

कभी-कभी ये कवि पहेलीनुमा[१०२] कविता रच लेते हैं और कभी- कभी

इन कवियों की जादूगरी चुटकुले[१०३] का सृजन करती है जो राजा रानी की कहानी से शुरू होकर रोटी और पानी के छोर तक पहुंच जाती है। 'धूमिल' का कहना है कि जब सभी दोस्तों की कविता हाशिए पर चुटकुला बन रही है तो मैं ही क्यों निष्ठा का तुक विष्ठा से मिला दूं।[१०४] नयी कविता की भाषा पहेली और चुटकुले तक ही सीमित नहीं है वह कभी-कभी कबीर की उलटवांसी का भी सामना करती है —

> इस वक्त जब कि कान नहीं सुनते हैं कविताएं
> कविता पेट से सुनी जा रही है,
> आदमी गजल नहीं गा रहा है
> गजल आदमी को गा रही है
> इस वक्त जब कि कविता मांगती है समूचा आदमी
> अपनी खुराक के लिए
> उसके मुंह से खून की बू आ रही है।[१०५]

नयी कविता के कवियों ने युगीन अन्तश्चेतना की जटिल प्रक्रिया को सम्प्रेषित करने के लिए ज्ञान-गर्भ फैंटेसी का भी सहारा लिया है। यह फैंटेसी कवि के अन्तर्मन की उलझन और महरावी सौन्दर्य को 'गजब' की 'बांकी' अदा दे गयी है।

नयी कविता के प्रयोक्ताओं ने : छोटी और बड़ी कविताएं भी लिखीं। गीत एवं प्रगीत नाट्यों की भी रचना हुई। इस धारा के कुछ काव्य नाटक अंधायुग, एक कंठ विषपायी, संशय की एक रात आत्मजयी आदि की कथोपकथन, एवं अभिनेयता ने काव्य भाषा को एक नया मिजाज

दिया। सन् १९८४ में 'दिल्ली में धूमिल की 'मोचीराम' कविता का अभिनय किया गया। इन कवियों ने लोकभाषा को सक्षम बनाने हेतु लोकधुनों पर आधारित रचनाएं भी प्रस्तुत कीं —

> रात पिया पछवारे पहरू ठनका किया
> कंप-कंप कर जला दिया
> बुझ-बुझ कर यह जिया
> मेरा अंग- अंग जैसे
> पछुए ने छू दिया
> बड़ी रात गये कहीं पंडुक पिहका किया। [१०६]

~~बड़ी रात गये कहीं पंडुक पिहका किया~~

नयी कविता के इन कवियों ने उर्दू की गजलें, शेर, रुबाईं, नज्म, अंग्रेजी के सानेट, बैलेड, जापानी, हाइकू, चीनी टंका जाति की रचनाएं भी प्रस्तुत कीं। नयी कविता के कवियों के सम्मुख सबसे बड़ी कठिनाई अभिव्यक्ति की थी उन्होंने नये माध्यमों की खोज की इसके साथ ही 'त्रिकोण' त्रिभुज, रेखा, चित्र, कोष्ठक, ह्रस्व-दीर्घ, वर्गमूल, काया, प्रश्नचिन्ह, सूनी रेखाएं आदि ज्यामितीय चिन्हों द्वारा अपनी उलझी हुई संवेदना को एक नया रूप देने का प्रयास किया। इस प्रकार नयी कविता की भाषा अभिधात्मक एवं सपाट उक्ति से शुरू होकर वक्रोक्ति एवं ध्वनि सिद्धान्त के समस्त उपकरणों को एक नया आयाम देती है।

सन्दर्भ-सूची

१- अज्ञेय, भूमिका : तीसरा सप्तक, पृ० ६

२- डा० परमानन्द श्रीवास्तव, नयी कविता का परिप्रेक्ष्य, पृ० २८

३- एजरा पाउण्ड : ए क्रिटिकल एन्थालाजी, सं० जे०पी० सलिवन, पृ० ५२

४- अज्ञेय : दूसरा सप्तक वक्तव्य हरिनारायण व्यास

५- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, भाषा और संवेदना, पृ० ६७

६- 'निराला' डा० पुष्पा कंमल उद्धृत, हिन्दी काव्यशास्त्र में कविता का स्वरूप, विकास, पृ० २४६

७- द्रष्टव्य : टी० एस० इलियट, दि म्युजिक आफ पोयट्री, आन पोयट्री एण्ड पोयट्स लंदन १६६५ पृ० ३१

८- मलयज : कविता से साक्षात्कार, पृ० १४४

९- कब तक बहकावे में पड़े रहकर। चढ़ाये रहोगे नकाब कि पहचान संभव ही न हो। और आदमी भाषा के लिए और भाषा आदमी के लिए। धोखा बनती जाए कहीं से तो शुरू करना ही होगा चिकने और गोल शब्दों के तोड़ने का क्रम ।

-नरेन्द्रमोहन, इस हदसे : भाषा एक कार्यवाही, पृ० ६२

१०- अशोक वाजपेयी, फिलहाल, पृ० ६७

११- परमानन्द श्रीवास्तव, कवि कर्म और काव्यभाषा, पृ० ४०

१२- मलयज, कविता से साक्षात्कार, पृ० १२१

१३- इसके बाद। वादों की दुनियां में। धोखा खाने के लिए। कुछ भी न होगा। और कल जब भाषा भूख का हाथ छुड़ाकर। चमत्कारों की ओर वापस चली जायेगी, तो। मैं तुम्हें बातों से उठाकर आंतों में फेंक दूंगा ।

-- सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, पृ० ६१

Kalpana's

१४- सर्वेश्वर - गर्म हवाएं, पृष्ठ-४

१५- अच्छी कुंठा रहित इकाई। मैदों भरे समाज से
अच्छा अपना ठाट फकीरी। मंगनी के सुर साज से,
अज्ञेय : इन्द्रधनुष रौंदे हुए, पृ० ३१

१६- कुमारेन्द्र पाल सिंह, इतिहास का संवाद, पृ० १०२

१७- भाषा की परम्परा से अलगाव। मेरी उंगलियों के बीच।
परम्परा का अन्तिम सिगार बुझा हुआ अटका है।
-दूधनाथ सिंह : सुरंग से लौटते हुए, पृ० ६३

१८- धूमिल : सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र, पृ० २३

१९- महेन्द्रप्रताप सिंह-स्फुलिंग, पृ०-११

२०- कहीं कोई भाषा नहीं है। भूख के केन्द्र में।
एक थर-थराता हुआ आंसू है। जिस पर आग पहरा देती है।
- धूमिल : सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, पृ० ५६

२१- दूधनाथ सिंह, अपनी शताब्दी के नाम, पृ० ६०

२२- 'आह मेरी भाषा ! मैं तेरा सुन्दर उपयोग किस तरह करूं ।वही-पृ०६०

२३- मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध,पृ०१६७

२४- वही, पृ० ४

२५- अज्ञेय : आलवाल, पृ० ११-१२

२६- नयी कविता 'शब्द और अर्थ के बीच, अंक-८ पृ०-- ८२-८३

२७- उजली हंसी के छोर पर, क्या कहूंगा मैं' शीर्षक कविता, पृ० ३०

२८- तीसरा सप्तक भू० सं० अज्ञेय पृ० ११

२९- तार सप्तक : विवृति और पुनरावृति, पृ० सं० भूमिका, पृ० ११
३०- दूसरा सप्तक :भूमिका, पृ० ७
३१- वही, पृ० ७
३२- नयी कविता अंक-४ पृ०१४२
३३- वही, पृ० ४२
३४- नया आलोचक, सं० महेन्द्र मधुकर : अज्ञेय का काव्य उज्ज्वल वरदान चेतना का, निर्मल शर्मा- पृ० ४८
३५- एजरा पाउण्ड : ए क्रिटिकल एन्थालाजी, संपादक-जे०पी० सल्विन (द०ए०बी०सी० आफ रीडिंग शीर्षक लेख-पृ० २५८
३६- तारसप्तक- भूमिका- पृ० २७०-७१
३७- तीसरा सप्तक- भूमिका,पृ० ७
३८- 'आलवाल' पृ० १०
३९- तीसरा सप्तक, भूमिका-पृ० ८,त्रिशंकु पृ० ११९
४०- तारसप्तक, सं० अज्ञेय-भूमिका, पृ० २७१
४१- तारसप्तक, सं० अज्ञेय भूमिका, पृ० २७७-७८
~~४२- राजकुमार कुम्भज चौथा सप्तक-, वही कविता नहीं-पृ०९७~~
४२- तारसप्तक,सं० अज्ञेय पृ० २७६
४३- राजकुमार कुम्भज चौथा सप्तक-वही कविता नहीं, पृ० ९७
४४- डा० जगदीश गुप्त, नाव के पांव, पृ० १२
४५- द मीनिंग आफ कांटेंपरेरी रियलिज्म, पृ० १८८
४६- ध्वन्यालोक, ४:२
४७- दूसरा सप्तक, सं० अज्ञेय भूमिका, पृ० ११
४८- तीसरा सप्तक, सं० अज्ञेय भूमिका पृ० ७
४९- तीसरा सप्तक, सं० अज्ञेय भूमिका-पृ० ८
५०- जगदीश चतुर्वेदी-प्रारंभ की भूमिका, पृ० ११

५१- लिटरेरी एसेज आफ एजरापाउण्ड,संपादक-टी०एस०इलियट

५२- नया आलोचक, सं० महेन्द्र मधुकर
अज्ञेय का काव्य : उज्ज्वल वरदान चेतना का, निर्मल शर्मा, पृ० ४८

५३- तारसप्तक-सं० अज्ञेय-पृ० १०६-११०

५४- वही- पृष्ठ-१२५

५५- दूसरा सप्तक संपादक अज्ञेय-पृ० ४

५६- वही- पृ० ५४-५५

५७- वही- पृ० १३८-१३६

५८- तीसरा सप्तक संपादक-अज्ञेय-पृ० ४-५

५६- तीसरा सप्तक-संपादक-अज्ञेय, मदन वात्स्यायन,पृ० ६६

६०- नयी कविता अंक-२, पृ०३८ संपादक-डा० जगदीश गुप्त ।

६१- हमको न जरूरत आज देववाणी की ।
हम खुद ढालेंगे जीवन की भट्ठी में भाषा ।
जो चाहा रूप बना लेंगे ।
- तार सप्तक-संपादक-अज्ञेय पृ० ८६

६२- एजरा पाउण्ड, ए क्रिटिकल एन्थालोजी,
संपादक-जे०पी० सलिवन, पृ० ५७-५६

६३- टी० एस० इलियट, सेलेक्टेड प्रोज, सं० जान हैवर्ड, पृ० ५८

६४- वही, पृ० ५८

६५- वही,पृ० ५६

६६- वही, पृ० ६६

६७- द फोर क्वार्टेट्स, ए सेलेक्शन आफ क्रिटिकल एसेज,
संपादक-बर्नार्ड बर्गोजी, पृ० २५

kalpana's

६८- भारतभूषण अग्रवाल- वक्तव्य तार सप्तक, सं० अज्ञेय, पृ० ११२

६९- संपादक- अज्ञेय, तीसरा सप्तक-पृ० १५

७०- संपादक-अज्ञेय, तार सप्तक, पृ० ६५

७१- नकेन, पसपशा, पृ०-११३

७२- अज्ञेय, त्रिशंकु, पृ० ७३-७४

७३- गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ० ११-१२

७४- धूमिल,संसद से सड़क तक ।

७५- 'दिशान्तर' संपादक-डा० परमानन्द श्रीवास्तव, एवं
डा० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ० १०

७६- राजा दुबे, एक हस्ताक्षर और, पृ० १६

७७- चन्द्रकांत देवताले, निषेध, पृ० ५१

७८- किंतु असंतोष मुझको है गहरा। शब्दाभिव्यक्ति अभाव का संकेत
'मुक्ति बोध'- चांद का मुंह टेढ़ा, पृ० ३०५-३०६

७९- धर्मवीर भारती- अंधायुग, पृ० २६

८०- आप जवाब दो ।
आखिर मैं क्या करूं ?
आप उसे छुओ। वह कुनमुनाएगा
आप उसे कोंचो। वह उठ खड़ा होगा
- धूमिल- संसद से सड़क तक, पृ० ६७-६८

८१- रघुवीर सहाय, आत्महत्या के विरुद्ध, पृ० ६

८२- धर्मयुग, १० दिसम्बर १९७२,मदनलाल डांगा

८३- पंत, पल्लव की भूमिका- पृ० १२-१३

८४- लक्ष्मीकांत वर्मा, क ख ग-६,पृ० ५७

८५- लक्ष्मीकांत वर्मा, 'आलोचना' (जनवरी-मार्च) १९६८,पृ० ३०

८६- धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ० ६७

८७- धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ० १२०

८८- मलयज, पूर्वग्रह, सितम्बर, १९७४

८९- "वैयाकरण : अभिधा एकैव शब्दशक्ति रिति मन्यते ।
लक्षणामपि ते नांगीकुर्वन्ति, लक्षणा अभिधा पुच्छभूतेति वदन्ति ।"
साहिती जगती, काळूरिहनुमंतराव: पृ० ८

९०- प्रसिद्धाभिधान व्यतिरेकिणी विचित्र एव अभिधा-
कुंतक- वक्रोक्तिजीवितम् । प्रथम उन्मेष

९१- निराला- परिमल, पृ० ३

९२- डा० जगदीश नारायण श्रीवास्तव,
समकालीन कविता पर एक बहस, पृ० १८८

९३- दूसरा सप्तक, संपादक-अज्ञेय, पृ० ११

९४- नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, पृ० १३३-१३४

९५- सीढ़ियों पर धूप, रघुवीर सहाय, पृ० १४६

९६- एक सही कविता-
एक सार्थक वक्तव्य होती है ।
- धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ० ६

९७- टिलियर्ड, पोयट्री डायरेक्ट एण्ड आब्लाइक्, पृ०सं० १० :
टिलियर्ड का वक्रोक्ति सिद्धान्त, डा० मथुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ ।

९८- But the small social and moral common places, the more quotidian of human passions pass easily into direct statement.
टिलियर्ड : पोयट्री डायरेक्ट एण्ड आब्लाइक, पृ० २२,
सं० डा० मथुरेशनंदन कुलश्रेष्ठ

९९- धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०--

१००- रघुवीर सहाय, आत्म हत्या के विरुद्ध -

१०१- संवाद गायब है ; भाषा की खोज हो रही है
हर पल, हर रोज वो रही है
लोग एक दूसरे से मिलते हैं
जेबें टटोलते हैं
हाथ में आती हैं सिगरेट, दियासलाई, टिकिट,
रेजगारी, भाषा नहीं आती ।"
लीलाधर जगूड़ी- 'नाट्यारंभ ।
नाटक जारी है ।

१०२- उन्होंने कुछ नहीं किया
हाथ आयी तकली में सिर्फ 'फ' भर जुड़ने दिया -
श्रीराम शर्मा, 'नुक्कड़ पर घूरे ने कहा' ।

१०३- सच कविता नहीं रह गयी है
चारों तरफ चुटकुलों की गतिविधि है ,
और पहाड़ का ढेर सारा आतंक
इधर-उधर बिखरा पड़ा है
- राजकुमार कुंभज, चौथा सप्तक, कविता नहीं, पृ० ६७-६८

१०४- धूमिल- संसद से सड़क तक- पृ० ६७

१०५- वही, धूमिल- संसद से सड़क तक, पृ०-६६

१०६- तीसरा सप्तक, संपादक-अज्ञेय, पृ० १६

Kalpaz 3